नागौर के सांस्कृतिक जीवन में मंदिर एवं उनकी मूर्तिकला का योगदान

* डॉ. प्रतिभा यादव
** मुकेश यादव

परिचय

राजस्थान का पश्चिमी भाग विशेषतः मरूमण्डल (मारवाड़) प्रतिहारकालीन संस्कृति एवं कला की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। नागौर अचंल उसका अभिन्न अंग है। स्थापत्य एवं मूर्तिकला की गौरवपूर्ण परम्परा प्राचीन समय से ही इस क्षेत्र में विद्यमान रही है। कलात्मक मन्दिर, विशाल बावड़ियां बिखरी हुई मूर्तियां, कीर्तिस्तम्भ आदि ऐसी स्रोत सामग्री है जिनसे सांस्कृतिक इतिहास की जीवन्त झांकी शताब्दियों के अन्तराल के बाद भी मूक पाषाण–खण्डों के माध्यम से मुखर है। इन पर उत्कीर्ण अभिलेख नवीन तथ्यों को उद्घाटित करते हैं। इनकी विधिवत् खोज व समुचित मूल्यांकन करने से अंधकारमय इतिहास की विलुप्त कड़ियां जोड़ी जा सकती हैं।

पूर्व मध्यकाल में भीनमाल (जालोर) से डीडवाना (नागौर) तक का प्रदेश प्रतिहार राजवंश (750–1018 ई.) की प्रमुख क्रीडास्थली थी। यह परिसर गुर्जर–देश, गुर्जर–भूमि, गुर्जरात्रमण्डल आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध था। तत्कालीन साहित्य में इसे तीनों लोकों में विख्यात, धन,श्री–समृद्धि से युक्त,[2] तथा देवालयों से रम्य एवं अलंकृत[3] कहा गया है। चूंकि प्रतिहार राजवंश का मूलस्थान भिन्नमाल–जाबलिपुर (भीनमाल–जालोर) था और उनकी यह शाखा माण्डव्यपुर (मण्डोर) रोहिन्सकूप (घटियाला) मेडान्तक (मेड़ता) में शासन की बागडोर संभाले हुए थी, अतः यह सहज स्वाभाविक था कि गुर्जर देश में प्रतिहार कला परम्परा में विनिर्मित मंदिरों का जाल बिछ जाता। कला जगत् में माडव्यपुर (मंडोर), ऊकेश (ओसियां), रोहिन्सकूप (घटियाला), राज्यघंगकम् (बुचकुला), मेडान्तक (मेड़ता) आदि के प्रतिहारकालीन मंदिर पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। पिछले दशकों में राजस्थान में हुई खेज एवं सर्वेक्षण के परिणामस्वरूप विभिन्न परिसरों में अनेक प्रतिहारकालीन भव्य मंदिर, बावड़ियां, व स्मृति–स्तंभ प्रकाश में आ चुके है।

नागौर क्षेत्र प्रतिहार साग्राज्य का अविभाज्य अंग था। अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित भोज प्रतिहार के वि.सं. 900 फाल्गुन सुदि 13 (6 फरवरी, 844 ई– के शिवा ग्राम से प्राप्त ताम्रपात्र में स्पष्टतः गुर्जरात्र भूमि में स्थित डेण्डवाणक विषय (डीडवाना जिला) का उल्लेख है। ताम्रपात्र के ऊपरी भाग में मुद्रांक के रूप में देवी भगवती का अंकन सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है और शक्ति तथा उपासना की लोकप्रियता का परिचायक है।[6] तत्कालीन गुर्जरात्रा भूमि में वर्तमान मारवाड़ सिरोही–जालोर–भीनमाल एवं पूर्वी राजस्थान तक अधिकांश भाग सम्मिलित था। पश्चिम में डेण्डवाणक (डीडवाना) से लेकर पूर्व में राजोरगढ़ (अलवर), सतवास–कामां (भरतपुर) का क्षेत्र इसकी सांस्कृतिक सीमाएं थीं। वि.सं. 915 (858ई.) में जयसिंह सूरि रचित धर्मोपदेशमाला के विवरण से ज्ञात होता है कि नागौर अंचल मिहिर भोज के समय में प्रतिहार साम्राज्य का भाग था और वहां अनेक जिनालय विद्यमान थे। (नागउराइस जिणमंदिराणि जायणि णेगाणि)। उनके गुरू कृष्णर्षि ने वि.सं. 917 (860ई.) में नागौर के नारायण वसति महवीर जिनालय की प्रतिष्ठा[8] भी की थी। फलौदी पार्श्वनाथ (मेड़ता रोड) का मंदिर इस क्षेत्र का बहुत ही प्रसिद्ध जिनालय था जिसके शिखर की प्रतिष्ठा वि.सं. 1181 (1124ई.) में धर्मघोष सूरी ने की थी और इसका जीर्णोद्धार वि.सं. 1234 (1177ई.) में जिनपति सूरि द्वारा हुआ था। यहां की मूलनायक प्रतिमा को लगभग वि.सं. 1235 (1178ई.) में शहाबुद्दीन मोहम्मद ने भंग किया था[9]।

पिछले दशकों की खोज के परिणामस्वरूप डीडवाना परिसर से जो भी स्फुट सामग्री प्राप्त हुई है– वह प्रतिहार युग में इस क्षेत्र की समृद्धि का द्योतक है। छोटी खाटू की अलंकृत बावड़ी और वहां की मूर्तिकला, डीडवाना से प्राप्त अभिलेख युक्त स्मारक स्तम्भ तथा गोठ–मांगलोद का दधिमाता मंदिर 8–9वीं शताब्दी की प्रतिहारकालीन संस्कृति एवं कला के अन्यतम उदाहरण हैं। ये भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला को डीडवाना परिसर की महत्वपूर्ण तथा विशिष्ट देन हैं। डीडवाना से प्राप्त श्याम–प्रस्तर में विनिर्मित योगनारायण विष्णु की प्रतिमा प्रतिहारकालीन मूर्तिकला की पराकाष्ठा एव विशिष्ट कलाकृति है। यह जोधुर संग्रहालय की निधि है।
डीडवाना जुझारू वीरों की रणभूमि रही है। तीन दर्जन से भी अधिक स्मारक स्तम्भ वहां से खोजे जा चुके हैं जिनमें

अधिकांश पर लेख भी उत्कीर्ण हैं। कुछ पर मूर्तियां भी अंकित हैं। तिथ्यंकित सती स्मारक स्तम्भों का महत्व इतिहास की स्त्रोत सामग्री के रूप में सर्वोपरि है। ये वि.सं. 885, 888, 929 ,937, 946 के हैं। छोटी खाटू से इससे भी पुराने स्मारक फलक प्राप्त हुए हैं जिन पर वि.सं. 743 ,745, 749, 827 के लेख[12] उत्कीर्ण है। इसमें स्त्रियों के सहमरण का उल्लेख है परन्तु उनके लिए सती जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। इनमें ये अधिकांश सामग्री अभी अप्रकाशित है।

मंगलाणक (मंगलाना) इस परिसर का एक महत्वपूर्ण प्रतिहारकालीन केन्द्र था। यह डीडवाना से उत्तर पूर्व में 45 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां के निवासी जेद्दुकसुत दद्दुक की पत्नी लक्ष्मी ने 8 वीं शताब्दी में एक सुन्दर उमा माहेश्वर पट्ट (मूर्ति) कालिंजर (मध्यप्रदेश) में प्रतिष्ठित की थी जो वहां के नीलकण्ठ मंदिर में सुरक्षित है। इस मूर्ति पर उत्त्कीर्ण लेख[13] में देद्दुक को मंगलानक विनंग्गंत (मंगलानक से निकला हुआ) कहा गया है।
गोठ–मांगलोद का दधिमाता मंदिर प्रतिहारकालीन मंदिर स्थापत्य का सिरमौर है। दाहिमा (दाधीच) ब्राह्मणों की कुल देवी को समर्पित यह देवभवन भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला का गौरव है। शिखरबद्ध यह मंदिर पूर्वाभिमुख है। वेदीबंध की सादगी, जंघा भाग में रथिकाओं में देवी देवताओं की मूर्तियां, मंडोवर व शिखर की मध्यवर्ती कंठिका में चहुं ओर रामायण दृश्यावली, नागर–शैली का भव्य शिखर–प्रतिहारकालीन परम्परा के अनुरूप हैं। यह महा–मारू शैली के मंदिर का सुंदर उदाहरण है। जंघाभाग पंचरथ है जिसकी मध्यवर्ती प्रधान ताक में पश्चिम की ओर आसनस्थ चतुर्भुजी दुर्गा, उत्तर की ओर तपस्यारत चतुर्भुजी स्थानक पार्वती तथा दक्षिण की ओर अष्टभुजी आसनस्थ एवं कुम्भोदर (गणपति) खंडित प्रतिमा विद्यमान् है। कर्णरथ पर द्विबाहु स्थानक दिग्पाल वाहन सहित अंकित हैं यथा मेषवाहन अग्नि, महिषवाहन यम, नरवाहन नैऋत तथा मकरवाहन वरूण। प्रतिरथ में द्विबाहु स्थानक चामरधारिणी आमूर्तित हैं। राजस्थान की प्रतिहारकालीन मूर्तिकला में रामायण दृश्यावली का प्राचीनतम अंकन दधिमाता मंदिर में ही प्राप्त है। जंघा व शिखर भाग की मध्यवर्ती कंठिका में 15 विशालकाय फलकों में राम बनवास से लेकर लंका विजय तक के दृश्य कुशलतापूर्वक अज्ञातनामा कलाकार ने बड़ी सहृदयता से बनाये है जो डीडवाना परिसर को भारतीय मूर्तिकला की अन्यतम देन है।

इस मंदिर की मूल प्रशस्ति से संबंधित अभिलेख को पं. रामकरण आसोपा ने लगभग 80 वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। इसे मारवाड़ के प्राचीनतम अभिलेख की संज्ञा देते हुए उसमें अंकित तिथि संवत्सर सतेषु 289 श्रावण ब (दि) 13 को उन्होंने गुप्त संवत् से जोड़ते हुए उसे गुप्तकालीन (289+319 =608ई.) बताया था। परन्तु संवत् के नामोल्लेख के अभाव में यह समीकरण विवादास्पद है। मंदिर प्रतिहारकालीन (9वीं शती) है, अतः यह तिथि हर्ष संवत् (289 + 606 = 895 ई.) में अंकित प्रतीत होती है। संभवतः यह मंदिर प्रतिहार नरेश भोजदेव प्रथम (836–892ई.) के समय में बना। दौलतपुरा के वि.सं.900 (843ई.) के ताम्रपत्र में भगवती का अंकन उनके भगवती भक्त होने का प्रमाण है।

डीडवाना परिसर का अन्य महत्वपूर्ण प्रतिहारकालीन केन्द्र छोटी खाटू था जहां की अलंकृत बावड़ी एवं मठ में जड़ी मूर्तियां व अभिलेखयुक्त स्मारक–स्तम्भ उस गौरवपूर्ण अतीत के जीवन्त परिचायक हैं। जून 1968 में अत्यधिक वर्षा के कारण यह बावड़ी प्रकाश[16] में आयी। प्रतिहारकालीन बावड़ियों में राजस्थान की यह सर्वाधिक कलात्मक बावड़ी है जो अग्रेजी के एल आकार की है।[17] प्रवेश पर सीढ़ी से उतरते ही इस विशालकाय बावड़ी के बाएं और गवाक्ष में ऊपरी जटाजूटधारी शिव–मस्तक अंकित है और फिर थोड़े अतंराल पर एक आयताकार शिला–फलक पर 9 पंक्तियों का कुटिल लिपि में अभिलेख भी उत्कीर्ण हैं जो पर्याप्त अस्पष्ट हो चुका है। इसकी लिपि 9वीं शताब्दी की है और इसमें मरूभूमि के बावड़ी–निर्माण का उल्लेख है। निश्चय ही इस परिसर का यह बहुत ही महत्वपूर्ण अभिलेख है जिससे अंधकारयुगीन इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ सकता है। जिस ताक में यह अभिलेख विद्यमान् है उसके दोनों और घटपल्लवयुक्त सुन्दर अर्द्ध–स्तम्भ बने हैं। नीचे उतरने पर ये वापी त्रिस्तरीय है जिसकी छतें भी आच्छादित हैं जिनमें कुछ ध्वस्तप्राय हो रही हैं। दो स्तरों के मध्यवर्ती भाग में दोनों ओर घटपल्लव, अर्द्धकमलयुक्त विशालकाय स्तम्भों के बीच अंलकृत रथिकाएं (ताक) हैं, जिन पर उत्त्कीर्ण मूर्तिकला प्रतिहार युग की कला की सुन्दर कृतियां हैं। स्तम्भों के निचले भाग पर द्वारपाल एवं कच्छपवाहिनी यमुना तथा मरकतवाहिनी गंगा की भव्य मूर्तियां क्रमशः अंकित हैं। रथिकाओं (4 फीट 3 इंच 2फीट 7इंच) की द्वार शाखा भी प्रतिहारकालीन कला के अनुरूप पत्रलता युक्त है तथा निचले भाग में कुम्भ धारण किये गंगा–यमुना वाहन सहित मूर्ति हैं। राथिका का उत्तरंग लघ्वाकार शिखराकृति मंदिरों से युक्त हैं। ओसियां के बड़े सूर्य मंदिर 10वीं शताब्दी के गर्भगृह के द्वार खण्ड का उत्तरांग भी इसी प्रकार

के अलंकरण से सुशोभित है जिसके मध्यवर्ती भाग में एक ओर स्थानक पद्मपाणि शिव व दूसरी ओर शिवलिंग की पूजा करते मालाधर का दिग्दर्शन है। उत्तरांग के ऊपर उद्गम में बाएं ओर स्थानक चर्तुभुजी देवी और दाहिने ओर का यह उद्रम अब ध्वस्त होकर विलुप्त हो चुका है।[18]

छोटी खाटू की सबसे महत्वपूर्ण प्रतिमा षडानन स्कंद[19] की है जो निराली है। षड्भुजी कार्तिकेय नर्तन मुद्रा में हैं और अपने वाहन मयूर को बड़े दुलार से कुछ खिला रहे हैं। देवता के प्रधान मुख के ऊपर शीर्ष–भाग पर पांच अन्य मुखों को पंक्तिबद्ध रूप में प्रदर्शित कर अज्ञात कलाकार ने उनके षडानन नाम को सार्थकता प्रदान करने का कुशल प्रयास किया है। यद्यपि इस प्रकार का अंकन प्राचीन यौधेय सिक्कों तथा पंजाब–चम्बा–कुल्लू–कागड़ा की मध्यकालीन मूर्तियों में लोकप्रिय था परन्तु राजस्थान से इस आाशय की प्रतिमाएं अन्यत्र प्राप्त नहीं हुई हैं। प्रारंम्भिक 9 वीं शताब्दी की छोटी खाटू की यह महत्पूर्ण कार्तिकेय मूर्ति राजस्थानी शिल्प की अनुपम निधि है।

गुर्जरात्र मण्डल प्राचीन मन्दिरों में मंडित था। खिजरपुरा का वैष्णव मंदिर तथा किंसरिया का मायाजी मंदिर परबतसर क्षेत्र के महत्वपूर्ण मंदिर हैं। खिजरपुर की भांति आनन्दपुर कालू में भी प्राचीन प्रतिहाकालीन विष्णु मंदिर विद्यमान है ये 8वीं शताब्दी की कलाकृतियां है। आंनदपुर कालू से प्राप्त द्विभुजी आसनाथ चंद्र की प्रतिमा उल्लेखनीय है। किंसरिया माता का मंदिर पर्याप्त जीर्णोद्धार तथा नवीनीकरण के कारण अपना मूल प्राचीन स्वरूप यद्यपि खो चुका है परन्तु वह निश्चय ही 10 वीं शताब्दी में चौहान युग का महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय देवी मंदिर था। वेदीबंध तथा जंघा का अधिकांश भाग मूलस्वरूप में है परन्तु शिखर राजपूतकालीन है। इस मन्दिर में लगे (रविवार वैशाख सुदी अक्षयतृतीया के वि.सं. 1056 (999ई.) के अभिलेख से ज्ञात होता है कि दधीचक चच्च ने इस भवानी (अम्बिका) के मंदिर का निर्माण कराया जिसका शिखर कैलाश पर्वत की समता[21] करता था। वि.सं. 1768 शक संवत् 1633 आषाढ शुल्क 7 के एक अन्य अभिलेख में जोधपुर के राठौड़ शासक महाराजा अजीतसिंह के राज्यकाल में इस देवभवन के विशाल स्तर पर जीर्णोद्वार की चर्चा है। अद्यावधि यह ऐतिहासिक साक्ष्य अप्रकाशित है। मंदिर के सभामण्डप में विष्णु के दामोदर स्वरूप की परिचायक एक राजपूतकालीन सुन्दर प्रतिमा विद्यमान् है जिसकी चरण चौकी पर महाराजा अजीतसिंह के राजत्व का वि.सं. 1782 (1725ई.) का लेख भी उत्त्कीर्ण है।

डीडवाना की सुप्रसिद्ध नमक की झील (मारवाड़ बालिया) के निकट स्थित सरकी अथवा पाडा माता मंदिर–नागौर परिसर का महत्वपूर्ण परन्तु अल्पज्ञात प्राचीन मंदिर है। मध्यकालीन यह मंदिर मूलतः शिव मंदिर था जैसा कि जंघा भाग की पश्चिमी पिछली प्रधान ताक में नटराज शिव की प्रतिमा से सुस्पष्ट है। इसी प्रकार उत्तर की प्रधान ताक में महिष–मर्दिनी एवं दक्षिण की प्रधान ताक में नृत्य गणेश की मूर्ति विद्यमान् है जो उसके शैव स्वरूप की परिचायक है। अद्यावधि अप्रकाशित शिखरबद्ध इस मंदिर की बाह्यकंठिका में धार्मिक संदर्भों एवं कथानकों को कलाकार ने आमूर्तित किया है।

लाडनूं की ईदगाह में श्री गोविन्द अग्रवाल ने एक फलक पर सं. 1162 लिखा देखा था किन्तु अब वह फलक वहां से हटा दिया बताया गया है। इसी प्रकार यहां के गढ़ में सं.1010 के लेख से युक्त एक देवली थी। वह भी अब नहीं है किन्तु सौभाग्य से उसके फोटो ब्लॉक लाडनूं की स्मारिका और डॉ देवेन्द्र हाडा के एक लेख में शामिल हो गए। उनके लेख का मूल पाठ निम्न अनुसार प्रस्तुत किया जा सकता है–

(स्वस्तिक चिह्न) संवत् 1010 (भाद्र)

पद सुदि 6 सुक्र (दिने)

प ( ) ज दुहित्रक (सुव)

भोगांगति हुतः।।

गढ़ के भीतर बने हुए कुएं पर एक देवली है उस पर भी चार पंक्तियों का लेख है–

संवत् 1746 मी
त सावणं वद 15
श्री रेवतजी (स्त्री)
सती (भवत) शुभमस्तु''

गढ़ के बाहर मुखद्वार पर दाहिनी ओर एक अरबी लेख लगा है। उससे कुछ दूर बने गणेश मंदिर के गुंबज पर सं.

1424 का लेख बताया गया किन्तु वह अब वहां उपस्थित नहीं है।

(2) सं. 1209 वैषाख सुदि 13

साव स्य.....जिनचन्द्रेण कारिता

अनन्तकीर्तिभतोन (भक्तेन) प्रतिमा श्रेयसे शुभा।। माथुरसंघे।।

(3) सं. 1219 वैषाख शुक्ल 4 । माथुरसंघे।

श्री श्री श्री अनन्तकीर्तिसम्बोधितदालूण–

प्रकार माथुर संघ में आचार्य श्री गुणकीर्ति सूरि का शासन विक्रमी संवत् 1136 से इस 1200 तक और आचार्य श्री अनन्तकीर्ति का शासन विक्रमी संवत् 1201 से 1226 तक रहा। मंदिर निर्माता खांडिल्ल पालवंशी साहु देल्ह के दो पुत्र बहुदेव और सर्वदेव थे। बहुदेव की पत्नी आशा देवी के तीन पुत्र–महीपति, दामोदर और माधव और दामोदर पुत्री शान्ति तथा जौत्री– सर्वदेव की पत्नी विद्या के पुत्र नाग कुमार और पौत्र लक्ष्मीधर। किन्तु मंदिर पर माथुर संघ अथवा साहु देल्ह पुत्रों का एकाधिकार नहीं था। मंदिर में मूल प्रतिमा के अतिरिक्त सर्वाधिक प्राचीन प्रतिमाएं अनेक हैं। उन पर लेख नहीं हैं। भगवान् पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा पर ''सं. 1209 चैत्र सुदि 11 शान्तिसुतेन सेठकेण स्थापित– लेख है जो उपर्युक्त बहुदेव पुत्र दामोदर के पुत्र सेढक का हो सकता है किन्तु नवफणयुक्त श्याम वर्ण पाषाण की पार्श्वनाथ प्रतिमा पर स्पष्ट लिखा है कि यह प्रतिमा मूल संघ के साहु बालचंद सुत उदयदेव के पुत्र सुरपाल ने स्थापित कराई है–

''स 1145 ज्येष्ठ सुदि 5 गुरौ। मूल संघे। साहु

बलचंदसुतउदयदेवपुत्रसुरपालेन

श्रेयार्थ प्रतिमा कारिता।''

मूल संघ के मंडलपाल नामक श्रावक ने एक और प्रतिमा की प्रतिष्ठा सं. 1240 में करवाई। उस पर अस्पष्ट लेख है जो इस प्रकार पढ़ा जाता है–

''सं. 1240 वैषाख सुदी 9 मंडल पाल मूल संघे''

मंदिर में कुछ धातु की मूर्तिया और पूजा पात्र आदि भी रखे हैं जो सं. 2007 में श्री ऋद्धकरण फूलचंद पाण्ड्यां के कुण्ड खोदने पर एक कलश में रखे मिले थे।

*** शोध निर्देषिका**
राजस्थान स्कूल ऑफ आट्र्स,जयपुर
**** शोधार्थी**
राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

संदर्भ–ग्रंथ

1. जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह, सिंघी जैन ग्रंथमाला, पृ. 62
2. प्रभावकचरित, निर्णयसागर संस्करण, श्लोक 4, पृ. 128
3. उद्योतन सूरि द्वारा जालोर में वि.सं. 835/शक संवत् 700 में रचित कुवलयमाला कथा।
4. डॉ. दशरथ शर्मा, ओरिजिन ऑफ दि प्रतिहार्सः ए रिवाइज्ड स्टडी, इण्डियन हिस्ट्री
5. कीलहार्न, दौलतपुर कॉपर प्लेट इंस्क्रिप्शन वि.सं. 900 एपिग्राफिया इण्डिका,वा 5 पृ. 208–13
6. आर. सी. अग्रवाल, भगवती ऑन कॉपर प्लेट सील ऑफ वि.सं. 900 जर्नल नूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इंडिया,
7. डॉ. विभूति भूषण मिश्रा, गुर्जर प्रतिहार एण्ड देयर टाइम्स, 1966, पृ. 2
8. मोहनलाल दुलीचंद देसाईः जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास (गुजराती), बम्बई, 1943, पृ. 180
9. आर. सी. अग्रवाल, ए यूनिक इमेज ऑफ योग–नारायण फ्रॉम राजपूताना, 1954, वा. 7 नं. 3–4
10. रत्नचन्द्र अग्रवालः पश्चिमी राजस्थान के कुछ प्रारम्भिक स्मृति स्तम्भ, वरदा, बिसाऊ, भाग 6 अंक 2,अप्रैल 1963, पृ. 68–79